४. भारतीय कलाओं का इतिहास

४.१ कला किसे कहते हैं ?
४.२ भारत की दृश्य कला परंपरा
४.३ भारत की ललित/आंगिक कला परंपरा
४.४ कलाएँ, उपयोजित कलाएँ और व्यवसाय के अवसर

४.१ कला किसे कहते हैं ?

स्वयं को प्राप्त हुए अनुभव और उनके द्‌वारा प्राप्त ज्ञान तथा मन की भाव-भावनाएँ दूसरों तक पहुँचें; यह प्रत्येक व्यक्ति की सहज प्रवृत्ति होती है । इस सहज प्रवृत्ति की प्रेरणा में से जब किसी सौंदर्यपूर्ण कृति का निर्माण किया जाता है; तब उसे कला कहा जाता है । कला के निर्माण की जड़ में कलाकार की कल्पनाशीलता, संवेदनशीलता, भावनात्मकता और कौशल जैसे घटक अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं ।

दृश्य कला और ललित कला : कला प्रकारों का विभाजन 'दृश्य कला' और 'ललित कला' में किया जाता है । ललित कलाओं को आंगिक कला भी कहा जाता है । दृश्य कलाओं का उद्‌गम प्रागैतिहासिक कालखंड में ही हुआ; इसे दर्शानेवाले अनेक कलाओं के नमूने अश्मयुगीन गुफाओं में से प्राप्त हुए हैं ।

लोक कला और अभिजात कला : कला की दो परंपराएँ - 'लोक कला' और 'अभिजात कला' मानी जाती हैं । 'लोक कला' अश्मयुगीन कालखंड से अखंडित रूप से चली आ रही परंपरा है । उसकी अभिव्यक्ति लोगों के प्रतिदिन जीवन का अंग होती है । परिणामस्वरूप इस परंपरा की अभिव्यक्ति अधिक उत्स्फूर्त होती है । लोक कला का निर्माण समूह के लोगों के प्रत्यक्ष सहभाग द्‌वारा होता है । 'अभिजात कला' निर्धारित नियमों की चौखट में बद्‌ध होती है। इसे आत्मसात करने के लिए दीर्घकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है ।

कला शैली : प्रत्येक कलाकार की कलाभिव्यक्ति एक स्वतंत्र पद्‌धति अर्थात शैली होती है । जब कोई पद्‌धति परंपरा का स्वरूप धारण कर लेती है, तब वह पद्‌धति विशिष्ट कलाशैली के रूप में अपनी पहचान बना लेती है । प्रत्येक संस्कृति में भिन्न-भिन्न कालखंड और प्रदेशों से संबंधित विशिष्ट प्रकार की कलाशैलियाँ विकसित होती हैं । उन शैलियों के आधार पर उस-उस संस्कृति की कला के इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है ।

मराठा चित्र शैली : कला शैली के रूप में मराठा चित्रशैली का विचार किया जा सकता है । लगभग ई.स.की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मराठा चित्र शैली के विकसित होने का प्रारंभ हुआ । इस शैली में बनाए गए चित्र रंगीन हैं तथा वे भित्तिचित्र और हस्तलिखितों (पांडुलिपियों) में लघुचित्रों के स्वरूप में हैं । वाई, मेणवली और सातारा जैसे स्थानों पर पुराने बाड़ों में मराठा चित्रशैली में निर्मित कुछ भित्तिचित्र देखने को मिलते हैं । मराठा चित्र शैली पर राजपूत और यूरोपीय चित्रशैली का प्रभाव दिखाई देता है ।

जिस कालखंड में किसी विशिष्ट चित्र शैली का विकास हुआ होगा; उस कालखंड का रहन-सहन, परिधान, रीति-रिवाज आदि बातों का अध्ययन उस शैली में बनाए गए चित्रों के आधार पर किया जा सकता है ।

४.२ भारत की दृश्य कला परंपरा

दृश्य कला में चित्रकला और शिल्पकला का समावेश होता है ।

भित्तिचित्र : बोधिसत्त्व पद्मपाणि

चित्रकला : चित्रकला द्विमितीय होती है । जैसे : प्रकृति का चित्र, वस्तु का चित्र, व्यक्ति का चित्र, वस्तुओं का आरेखन आदि चित्र खींचे जाते हैं । इसके लिए शिलाखंड, दीवारें, कागज, सूती अथवा रेशमी कपड़ों के कैनवस, मिट्टी के बरतन जैसे माध्यमों अथवा साधनों का उपयोग किया जाता है । जैसे : अजिंठा (अजंता) गुफा में बोधिसत्त्व पद्मपाणि का भित्तिचित्र ।

लोक चित्रकला शैली : अश्मयुग में गुफाओं की दीवारों पर बने चित्र अनेक देशों में पाए जाते हैं ।

भारत में मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तेलंगाना राज्यों में गुफाचित्रोंवाले अनेक स्थान हैं । मध्य प्रदेश में भीमबेटका स्थान पर बने गुफाचित्र प्रसिद्ध हैं । विश्व विरासत स्थानों में भीमबेटका के गुफाचित्रों का समावेश किया गया है ।

गुफाचित्रों में मनुष्य की आकृतियों, प्राणियों और कुछ भूमितीय आकृतियों का समावेश रहता है । पुराश्म युग से लेकर खेती का प्रारंभ होने के कालखंड तक इन चित्रों की शैली और उनके विषयों में जो परिवर्तन होते गए; वे पाए जाते हैं । चित्रों में नवीन प्राणियों और वनस्पतियों का भी समावेश किया हुआ दिखाई देता है । साथ ही; मनुष्यों की आकृतियों की आरेखन पद्धति और उपयोग में लाये गए रंगों में भी अंतर आता गया है । इन चित्रों में काला, लाल और श्वेत जैसे प्राकृतिक द्रव्यों से तैयार किए गए रंगों का उपयोग किया गया है । अलग-अलग कालखंड के लोगों का उनके परिसर के विषय में ज्ञान और प्राकृतिक स्रोतों का उपयोग कर लेने के तकनीकी विज्ञान का विकास किस प्रकार होता गया; इसकी कल्पना इन चित्रों द्वारा की जा सकती है ?

क्या, आप जानते हैं ?

महाराष्ट्र में प्रचलित वारली चित्र परंपरा और पिंगुल अथवा चित्रकथी परंपरा लोककला शैली के कुछ उल्लेखनीय उदाहरण हैं । ठाणे जिले के निवासी जिव्या सोम्या मशे का वारली चित्रकला को लोकप्रिय बनाने में बहुत बड़ा योगदान है । उनके बनाए हुए वारली चित्रों के लिए उन्हें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं । वर्ष २०११ ई. में उन्हें पद्मश्री उपाधि से सम्मानित किया गया है ।

इसे समझ लें

ई.स.की बारहवीं शताब्दी में चालुक्य नरेश सोमेश्वर द्वारा लिखित 'मानसोल्लास' अथवा 'अभिलषितार्थचिंतामणि' ग्रंथ में चित्रकथी परंपरा का वर्णन पाया जाता है । इसके आधार पर इस परंपरा की प्राचीनता का अनुमान हो जाता है । कठपुतलियों अथवा चित्रों की सहायता से रामायण,

महाभारत की कथा बताने की परंपरा को चित्रकथी परंपरा कहते हैं । इस परंपरा में कागज पर चित्रों को बनाकर उन्हें प्राकृतिक रंगों में रँगा जाता है । एक कथा अथवा कहानी के लिए लगभग ३० से ५० चित्रों का उपयोग किया जाता है । विभिन्न कथाएँ बताने के लिए ऐसे चित्रों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते आ रहे ग्रंथ चित्रकथी परंपरा में संरक्षित रखे होते हैं। विलुप्त होने के कगार पर पहुँची इस परंपरा को पुनर्जीवित करने के प्रयास सरकार और कलाकारों द्‌वारा किए जा रहे हैं ।

लोक चित्रकला की परंपरा गुफाचित्रों के साथ संबंध दर्शाती है । परिवार में संपन्न होनेवाले विवाह में, तीज-त्योहारों के अवसर पर दीवारों पर चित्र बनाना, आँगन में रंगोली बनाना तथा चित्रों की सहायता से आख्यानों को व्यक्त करना; इनमें से प्रादेशिक लोककला परंपरा में विविध चित्रशैलियाँ विकसित हुईं।

अभिजात चित्रकला : हम देख सकते हैं कि प्राचीन भारतीय साहित्य अथवा वाङ्‌मय में विभिन्न कलाओं के विषय में सांगोपांग विचार किया गया है। उसमें कुल ६४ कलाओं का उल्लेख पाया जाता है। उसमें चित्रकला का उल्लेख 'आलेख्यम्' अथवा 'आलेख्य विद्‌या' नाम से हुआ है । आलेख विद्‌या के 'षडांग' अथवा छह महत्त्वपूर्ण अंग हैं । इन छह अंगों का प्राचीन भारतीयों ने बड़ी सूक्ष्मता से विचार किया है । उनमें रूप भेद (विभिन्न आकार), परिमाण (अनुपातबद्‌ध रचना और नापें), भाव (भाव प्रदर्शन), लावण्ययोजन (सुंदरता का स्पर्श), सादृश्यता (वास्तविकता का आभास कराने वाला चित्रण) और वर्णिकाभंग (रंगों का आयोजन) का समावेश है ।

विविध धार्मिक पंथों के आगम ग्रंथों, पुराणों और वास्तु शास्त्र के ग्रंथों में चित्रकला, शिल्पकला का विचार मंदिर निर्माण में किया हुआ दिखाई देता है ।

हस्तलिखितों (पांडुलिपियों) में लघुचित्र : हस्तलिखितों में बनाए जाने वाले लघुचित्रों पर प्रारंभ में फारसी शैली का प्रभाव था । दक्षिण के मुस्लिम शासकों के आश्रय में दक्खिनी लघुचित्र शैली विकसित हुई। मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल में फारसी और भारतीय चित्रकारों की मिश्रित शैलियों में से मुगल लघुचित्र शैली का उदय हुआ ।

मुगल शैली

यूरोपीय चित्रशैली : अंग्रेजों के शासनकाल में पश्चिमी चित्रशैली का प्रभाव भारतीय चित्रशैली पर दिखाई देता है। पुणे के शनिवारवाड़ा में सवाई माधवराव पेशवा के शासनकाल में स्कॉटिश चित्रकार जेम्स वेल्स के मार्गदर्शन में कलाशाला की स्थापना की गई थी । उसने सवाई माधवराव और नाना फड़नवीस का चित्र बनाया था । वेल्स के साथ चित्रकारिता करने वाले एक मराठी चित्रकार गंगाराम तांबट का यहाँ विशेष उल्लेख करना चाहिए। उन्होंने वेरुल (एलोरा), कार्ले की गुफाओं में चित्र बनाए थे । उनके बनाए हुए कुछ चित्र अमेरिका के येल विश्वविद्‌यालय के 'येल सेंटर ऑफ ब्रिटिश आर्ट' में संरक्षित रखे गए हैं।

सवाई माधवराव और नाना फड़नवीस

गंगाराम तांबट का अपने गुरु के साथ आरेखित स्व-चित्र

चित्रवस्तु का हू-ब-हू चित्र बनाना पश्चिमी चित्रशैली की विशिष्टता समझी जाती है । मुंबई में १८५७ ई. में जे.जे.स्कूल ऑफ आर्ट एंड इंडस्ट्री की स्थापना हुई । इस संस्था में पश्चिमी कला शैलियों की शिक्षा प्रदान की जाती है । इस कला संस्था से शिक्षा ग्रहण कर अनेक गुणवान चित्रकारों ने ख्याति अर्जित की है । उनमें पेस्तन जी बोमन जी ने अजिंठा (अजंता) गुफाओं के चित्रों की प्रतिकृति बनाने का कार्य किया ।

शिल्पकला : शिल्पकला त्रिमितीय होती है । जैसे-मूर्ति, प्रतिमा, कलापूर्ण बरतन और वस्तुएँ । शिल्प उकेरे जाते हैं अथवा गढ़े जाते हैं । इसके लिए पत्थर, धातुएँ और मिट्टी का उपयोग किया जाता है । वेरुल (एलोरा) की कैलाश गुफाएँ अखंड प्रस्तरखंड में उकेरा हुआ अद्‌वितीय शिल्प है । सारनाथ में अशोक स्तंभ के शीर्ष पर चार सिंहोंवाले शिल्प पर आधारित चित्र भारत का राष्ट्रीय मानचिह्न है ।

अशोक स्तंभ

लोक शिल्पकला शैली : चित्रकला के समान ही शिल्पकला भी अश्मयुग जितनी प्राचीन है । पत्थर के औजार बनाने का जो प्रारंभ हुआ; वह एक प्रकार से शिल्पकला का ही प्रारंभ था, ऐसा कहा जा सकता है । भारत में धार्मिक अवसरों पर मिट्टी की प्रतिमाएँ तैयार कर उनकी पूजा करने अथवा उन्हें अर्पण करने की प्रथा हड़प्पा संस्कृति के समय से चली आ रही थी । अब तक वह प्रथा बंगाल, बिहार, गुजरात, राजस्थान जैसे अनेक राज्यों में प्रचलित दिखाई देती है । महाराष्ट्र में तैयार की जाने वाली गणेश जी की मूर्तियाँ, गौरी के मुखौटे, बैलपोला के लिए बनाए जाने वाले मिट्टी के बैल, पूर्वजों की स्मृति में निर्मित लकड़ी के मुखौटेवाले स्तंभ, वीरगल, आदिवासी घरों में संग्रहीत कर रखने के लिए बने मिट्टी के भंडारगृह आदि इसी शिल्पकला की लोकपरंपरा की गवाही देते हैं ।

अभिजात शिल्पकला शैली : हड़प्पा संस्कृति की मुद्राएँ, पत्थर और कांस्य की प्रतिमाएँ पाँच हजार वर्ष अथवा उससे भी अधिक प्राचीन भारतीय शिल्पकला की परंपरा की साक्ष्य देती हैं । माना जाता है कि सम्राट अशोक के कार्यकाल में निर्मित पत्थर के स्तंभों से भारत में उकेरे पत्थर के शिल्प निर्माण का सच्चे अर्थ में प्रारंभ हुआ ।

भारहूत स्तूप : शिल्प

मध्य प्रदेश के सांची का स्तूप प्रथम सम्राट अशोक के कार्यकाल में बनाया गया । लेकिन उसपर निर्मित सुंदर शिल्पों की सजावट कालांतर में की गई होगी; ऐसा माना जाता है । भारत में शिल्पकला का विकास कालांतर में होता रहा । इसकी साक्ष्य हमें भारहूत स्तूप पर बने शिल्पों द्‌वारा हो जाती है । बौद्‌ध धर्म का प्रसार भारत के बाहर दूर-दूर तक हुआ । परिणामस्वरूप उन देशों में स्तूप निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई । इंडोनेशिया के बोरोबुदुर में निर्मित स्तूप संसार में सबसे विशाल स्तूप है । इस स्तूप का निर्माण ई.स.की आठवीं-नौवीं शताब्दी में किया गया । १९९१ ई. में यूनेस्को ने बोरोबुदुर को विश्व विरासत स्थान के रूप में घोषित किया है ।

बोरोबुदुर स्तूप

भारतीय मूर्ति विज्ञान : अफगानिस्तान और आस-पास के प्रदेशों में ई.स. की दूसरी शताब्दी में ग्रीक (यूनानी) और पर्शियन (फारसी) प्रभाव को दर्शाने वाली गांधार शिल्पकला शैली का उदय हुआ ।

ई.स. की प्रथम शताब्दी से तीसरी शताब्दी के

नटराज

बीच अर्थात कुषाणों के कार्यकाल में मथुरा शिल्प शैली का उदय हुआ । इस शैली ने भारतीय मूर्ति विज्ञान की नींव रखी । देवप्रतिमाओं का उपयोग किए जाने की कल्पना पहली बार कुषाणों के सिक्कों पर दिखाई देती है । गुप्त साम्राज्य के कार्यकाल में भारतीय मूर्ति विज्ञान से संबंधित नियम बनाए गए और शिल्पकला के मापदंड निर्धारित किए गए । ई.स.की नौवीं से तेरहवीं शताब्दियों के बीच चोल राजाओं के आधिपत्य में दक्षिण भारत में कांस्य मूर्तियों का निर्माण करने की कला विकसित हुई । इन मूर्तियों में शिव-पार्वती, नटराज, लक्ष्मी, विष्णु जैसे देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण किया जाने लगा ।

स्थापत्य और शिल्पकला : भारत में कई उकेरी हुई गुफाएँ हैं । उकेरी हुई गुफाओं की परंपरा भारत में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में प्रारंभ हुई । तकनीकी दृष्टि से समग्र गुफा स्थापत्य और उकेरे हुए शिल्प का एकत्रित उदाहरण होती है । प्रवेश द्वार, भीतर के खंभे और मूर्तियाँ शिल्पकला के उत्तम नमूने होती हैं ।

दीवारों और छतों पर किया गया चित्रकार्य कुछ गुफाओं में आज भी कुछ सीमा तक बना हुआ है ।

अजिंठा (अजंता) गुफा क्र. १९ प्रवेश द्वार

महाराष्ट्र में अजिंठा (अजंता) और वेरुल (एलोरा) की गुफाओं को १९८३ ई. में विश्व विरासत स्थान का दर्जा प्रदान किया गया ।

भारत में मंदिर स्थापत्य का प्रारंभ लगभग ई.स. की चौथी शताब्दी में गुप्त साम्राज्य के कार्यकाल में हुआ । गुप्तकाल के प्रारंभ में गर्भगृह और उसके बाहरी चार स्तंभोंवाला गृह केवल यही मंदिर का स्वरूप था ।

ई.स. की आठवीं शताब्दी तक भारत में मंदिर स्थापत्य पूर्ण विकसित हुआ था; यह वेरुल (एलोरा) के कैलाश मंदिर की भव्य रचना के आधार पर सहजता से ध्यान में आता है । मध्ययुगीन समय तक भारतीय मंदिर स्थापत्य की अनेक शैलियाँ विकसित हुईं । ये शैलियाँ शिखरों की रचना विशेषताओं के अनुसार निश्चित की जाती हैं । उनमें उत्तर भारत की 'नागर' और दक्षिण भारत की 'द्राविड़' ये दो प्रमुख शैलियाँ मानी जाती हैं । इन दोनों शैलियों का समन्वय होने से जो मिश्र शैली विकसित हुई; उसे 'वेसर' कहते हैं । मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में पाई जानेवाली 'भूमिज' मंदिर शैली और 'नागर' मंदिर शैली में रचना की दृष्टि से समानता पाई जाती है । भूमिज शैली में क्रमशः छोटे होते जाते शिखरों की प्रतिकृतियाँ ऊपर तक रची होती हैं ।

नागर शैली का शिखर

द्राविड़ शैली का गोपुर

मालूम कर लें

महाराष्ट्र में बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में निर्मित मंदिरों को 'हेमाड़पंती मंदिर' कहते हैं । हेमाड़पंती मंदिर की बाहरी दीवारें प्रायः तारकाकृति होती हैं । तारकाकृति मंदिर की बनावट में मंदिर की बाह्य दीवार अनेक कोणों में विभाजित हो जाती है । अतः उन दीवारों और उनपर बने शिल्पों पर छायाप्रकाश का सुंदर प्रभाव देखने को मिलता है । हेमाड़पंती मंदिरों की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि दीवारों के पत्थर जोड़ने लिए चूने का उपयोग नहीं किया जाता । पत्थरों में ही एक-दूसरे में कसकर फँसेंगे ऐसे खरादे हुए छेद में चूल बिठाकर उसके सहारे दीवार खड़ी की जाती है । मुंबई के समीपस्थ अंबरनाथ का अंब्रेश्वर, नाशिक के समीप सिन्नर का गोंदेश्वर, हिंगोली जिले में औंढा नागनाथ हेमाड़पंती मंदिर के उत्तम उदाहरण हैं । इन मंदिरों की बनावट तारकाकृति प्रकार की है । इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र में अनेक स्थानों पर हेमाड़पंती मंदिर देखने को मिलते हैं ।

गोंदेश्वर मंदिर – सिन्नर

मध्ययुगीन भारत में मुस्लिम सत्ताओं के आश्रय में पर्शियन, मध्य एशियाई, अरबी और इस्लामपूर्व भारतीय स्थापत्य शैली की अनेक धाराएँ इकट्ठी आईं । उनमें से भारत का मुस्लिम स्थापत्य विकसित हुआ । कई सुंदर वास्तुओं का निर्माण किया गया । दिल्ली के समीप मेहरौली की कुतुबमीनार, आगरा का ताज महल और बीजापुर का गोलगुंबज जैसी वास्तुएँ मुस्लिम स्थापत्य शैली के विश्वविख्यात उदाहरण हैं । कुतुबउद्दीन ऐबक (ई.स.की बारहवीं शताब्दी) के कार्यकाल में कुतुबमीनार के निर्माण कार्य को प्रारंभ हुआ और उसके पश्चात अल्तमश (ई.स.की तेरहवीं शताब्दी) के शासनकाल में कुतुबमीनार का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ । कुतुबमीनार संसार में सर्वाधिक ऊँची मीनार है । इसकी ऊँचाई ७३ मीटर (२४० फीट) है । जिस वास्तुसंकुल का कुतुबमीनार हिस्सा है; वह कुतुब वास्तुसंकुल यूनेस्को द्वारा विश्व विरासत स्थान के रूप में घोषित किया गया है ।

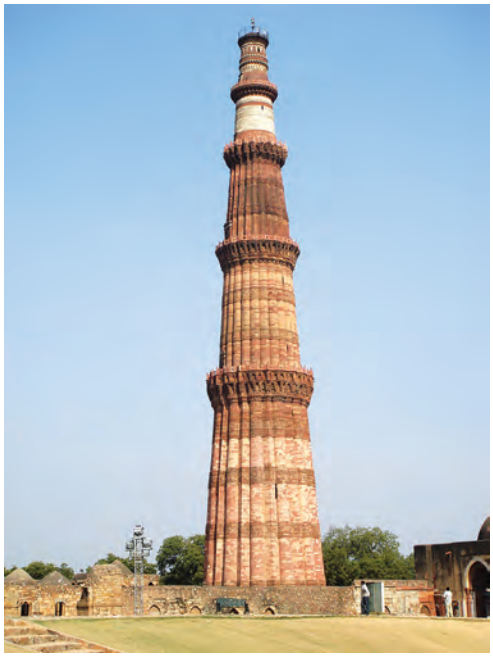

कुतुबमीनार

मुगल सम्राट शाहजहाँ ने उसकी बेगम (पत्नी) मुमताज महल की याद में ताज महल का निर्माण करवाया । ताज महल भारत का सौंदर्यपूर्ण मुस्लिम

ताज महल

स्थापत्य का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है । विश्वविख्यात मानी गई इस वास्तु को यूनेस्को ने विश्व विरासत स्थान के रूप में घोषित किया है ।

ई.स. की सत्रहवीं शताब्दी में निर्मित बीजापुर की अतिभव्य इमारत गोलगुंबज मुहम्मद आदिलशाह की कब्र है । इस इमारत को गोलगुंबज नाम जिस कारण मिला है; उस गुंबज के अंदरवाले घेरे से लगकर गोल छज्जा है । इस छज्जे में खड़े रहकर धीमी आवाज में बात करें अथवा फुसफुसाएँ तब भी वह आवाज सर्वत्र सुनाई देती है । यदि जोर से ताली बजाएँ तो उसकी प्रतिध्वनि कई बार गूँजती रहती है ।

गोलगुंबज

भारत में अंग्रेजों की सत्ता स्थापित होने के बाद एक नई स्थापत्य शैली का उदय हुआ । इसे इंडो-गोथिक स्थापत्य शैली कहते हैं । अंग्रेजों के कार्यकाल में बाँधे गए चर्च, सरकारी कार्यालय, बड़े पदाधिकारियों के आवास स्थान, रेल स्टेशन जैसी इमारतों में यह शैली देखने को मिलती है । मुंबई की 'छत्रपति शिवाजी महाराज रेल टर्मिनस' इमारत इस शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है । यह इमारत यूनेस्को की विश्व विरासत स्थान की सूची में समाविष्ट हुई है ।

छत्रपति शिवाजी महाराज रेल टर्मिनस

४.३ भारत में ललित/आंगिक कला परंपराएँ

लोककलाओं की परंपराएँ : भारत के प्रत्येक प्रदेश की विविधतापूर्ण लोकगीतों, लोकवाद्यों, लोकनृत्यों और लोकनाट्यों की परंपराएँ हैं । महाराष्ट्र में भी लोककला की अनेक परंपराएँ प्रचलित हैं । ये लोककलाएँ धार्मिक पर्व और सामाजिक जीवन के अभिन्न हिस्से के रूप में विकसित हुईं । इन लोककलाओं में कोली नृत्य (मछुआरों का नृत्य), तारपा नृत्य, कोंकण का दशावतार, पोवाड़ा (शौर्य गान), कीर्तन, जागरण-गोंधल कुछ मोटे उदाहरण हैं ।

अभिजात कलाओं की परंपराएँ : भारत को लोककलाओं की भाँति अभिजात कलाओं की अतिसंपन्न विरासत प्राप्त हुई है । भरतमुनि द्वारा लिखित 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में गायन, वादन, नृत्य, नाट्य जैसी कलाओं का विस्तार में विचारविमर्श हुआ है । इस दृष्टि से यह सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ माना जाता है । भारतीय ललित कलाओं की प्रस्तुति में शृंगार, हास्य, बीभत्स, रौद्र, करुण, वीर, भयानक, अद्‌भुत और शांत इन नौ रसों को मूलभूत माना गया है ।

भारतीय लोगों का विदेशी लोगों के साथ निरंतर संपर्क होता रहा और उसके द्वारा उन कलाओं की प्रस्तुति में अनेक धाराएँ घुलती गईं । परिणामस्वरूप वे अधिकाधिक संपन्न होती गईं । शास्त्रीय गायन, वादन, नृत्य की विविध शैलियों और उन शैलियों का संवर्धन करने वाले घरानों का निर्माण हुआ ।

भारत में शास्त्रीय गायन की दो प्रमुख शाखाएँ - 'हिंदुस्तानी संगीत' और 'कर्नाटक संगीत' हैं । साथ ही शास्त्रीय और उपशास्त्रीय ये दो भेद हैं । उपशास्त्रीय गायन में अनेक लोकगीत शैलियों का समावेश दिखाई देता है ।

क्या, आप जानते हैं ?

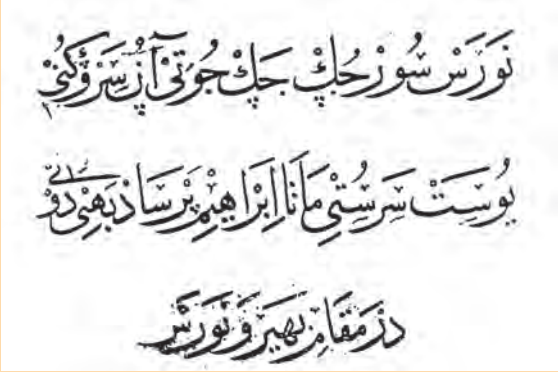

बीजापुर के सुलतान इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय ने दक्खिनी उर्दू भाषा में 'किताब-ए-नवरस' ग्रंथ लिखा । यह ग्रंथ संगीत शास्त्र से संबंधित है तथा गायन के अनुकूल गीतोंवाला, धृपद गायकी को सामने रखकर गीतों को साकार करता है, उत्तम श्रेणी के काव्यग्रंथ की अनुभूति रसिकों को प्रदान करता है ।

इस ग्रंथ का मराठी अनुवाद डॉ सैयद याह्या नशीत ने किया है तथा उसका मराठी संस्करण डॉ अरुण प्रभुणे ने किया है । इस ग्रंथ के मुखपृष्ठ पर अंकित दोहे का अनुवाद इस प्रकार है -

'हे माते सरस्वती, आप जगतज्योति और सर्वगुणसंपन्न हैं । यदि आपकी कृपा इस इब्राहिम पर हो गई तो (आपके आशीर्वाद से) नवरस का गीत युग-युग तक जीवित रहेगा ।'

उत्तर भारत में कत्थक, महाराष्ट्र में लावणी, ओडिशा का ओडिसी, तमिलनाडु का भरतनाट्यम्, आंध्र का कुचीपुड़ी, केरल का कथकली और मोहिनीअट्टम प्रचलित नृत्य शैलियाँ हैं । इन नृत्य शैलियों की प्रस्तुति में शास्त्रीय गायन, वादन और नृत्य का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है ।

स्वतंत्र भारत में शास्त्रीय संगीत और नृत्य सामान्य रसिकों तक पहुँचें, इस दृष्टि से विभिन्न स्थानों पर संगीत-नृत्य महोत्सवों का आयोजन किया जाता है । उनका आनंद और आस्वादन प्राप्त करने के लिए केवल भारत से ही नहीं अपितु विदेशों से भी अनगिनत रसिक आते हैं । पुणे में प्रतिवर्ष सवाई गंधर्व के नाम से आयोजित किया जाने वाला संगीत महोत्सव विख्यात है ।

लावणी नृत्य-महाराष्ट्र

कथकली-केरल

वर्तमान समय में भारतीय संगीत क्षेत्र में विशिष्ट शैली अथवा विशिष्ट घराने की सीमा को लाँघकर नया और अभिनव प्रयोग करने की ओर झुकाव दिखाई देता है । इसमें भारतीय संगीत के साथ पश्चिमी संगीत और पश्चिमी नृत्य का मेल बिठाने का प्रयास भी दिखाई देता है । इस प्रकार की नई शैली विकसित करने वालों में उदय शंकर का नाम विशेष रूप से लेना चाहिए । उन्होंने भारत के शास्त्रीय नृत्य और यूरोपीय रंगमंच की नृत्यनाट्य परंपरा के बीच समन्वय साधा है । साथ ही, उन्होंने अपनी शैली में लोकनृत्य की विविध शैलियों को भी स्थान दिया है । इस प्रकार भारतीय ललित कलाओं का प्रस्तुति क्षेत्र विस्तार पाता हुआ दिखाई देता है । यही बात भारतीय दृश्य कलाओं के क्षेत्र में भी निरंतर हो रही है ।

४.४ कला, उपयोजित कला और व्यवसाय के अवसर

कला : कला का इतिहास एक ज्ञानशाखा है । इस क्षेत्र में अनुसंधान/शोधकार्य एवं व्यवसायों के अवसर पर उपलब्ध हो सकते हैं ।

(१) कला का इतिहास के अध्येता पत्रकारिता क्षेत्र में भी कार्य कर सकते हैं ।

(२) कलात्मक वस्तुओं के क्रय-विक्रय का एक स्वतंत्र क्षेत्र है । वहाँ कलात्मक वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करने के लिए वह कला वस्तु कृत्रिम/नकली है अथवा नहीं; इसकी परीक्षा करने की आवश्यकता होती है । इस हेतु कला इतिहास का गहन अध्ययन करने वाले तज्ञों की आवश्यकता होती है ।

(३) सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण और संवर्धन तथा सांस्कृतिक पर्यटन अब नए-से विकसित होने वाले क्षेत्र हैं । इन क्षेत्रों में भी कला के अध्येताओं के लिए अनेक व्यावसायिक अवसर उपलब्ध हैं । उनमें संग्रहालय और अभिलेखागार, पुस्तकालय और सूचना प्रसारण का तकनीकी विज्ञान, पुरातत्त्वीय अनुसंधान और भारतीय विद्याएँ ये कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं ।

उपयोजित कला : दृश्य और ललित कलाओं के क्षेत्र में कलाओं का निर्माण इसलिए किया जाता है कि रसिक कलाओं का शुद्ध रूप से रसास्वादन कर सकें । सभी कलाओं के क्षेत्रों में कार्य करने वाले कलाकारों का यही उद्देश्य होता है । इसके अतिरिक्त कलात्मक रचना और उसकी उपयोगिता के बीच समन्वय साधते हुए अनेक प्रकार की निर्मिति की जाती है । इस प्रकार उपयोगिता का उद्देश्य ध्यान में रखकर कला का निर्माण करना ही उपयोजित कला कहलाई जाती है ।

(१) औद्योगिक और विज्ञापन क्षेत्र, भवन/मकानों की साज-सज्जा और सजावट की वस्तुएँ, फिल्म और दूरदर्शन के कार्यक्रम के लिए आवश्यक कला निर्देशन, प्रकाशन और मुद्रण क्षेत्र में पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, समाचारपत्रों की संरचना, साज-सज्जा और सुलेखन, भेंटकार्ड, निमंत्रणपत्र, व्यक्तिगत लेखन सामग्री, उपहार की वस्तुएँ आदि अनेक बातों के लिए उपयोजित कला क्षेत्र के तज्ञों-जानकारों की आवश्यकता होती है ।

(२) स्थापत्य और फोटोग्राफी (छायाचित्रण) के क्षेत्र भी उपयोजित कला वर्ग में आते हैं । वर्तमान समय में संगणक पर तैयार किए हुए स्थिर और चलित चित्र, नक्काशी (डिजाइनें) और आरेखन (स्केच) का उपयोग किया जाता है । ये भी उपयोजित कला के ही अंग हैं । आभूषणों, मूल्यवान धातुओं की कला वस्तुओं, रंगीन, नक्काशीवाले मिट्टी के बरतन, बाँस और बेंत की वस्तुएँ, काँच की कलात्मक वस्तुएँ, सुंदर कपड़ा व वस्त्र निर्मिति ये सभी उपयोजित कला की विस्तृत सूची है ।

उपर्युक्त प्रत्येक क्षेत्र में बौद्धिक स्तर पर किसी संकल्पना के बारे में सोचकर उसे प्रत्यक्ष में उतारने तक निर्माण प्रक्रिया के अनेक चरण होते हैं । प्रत्येक चरण पर प्रशिक्षित एवं कुशल व्यक्तियों की बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है । कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन करते समय उनकी निर्माण प्रक्रिया कुछ विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं से बँधी होती है । इन क्षेत्रों की प्रक्रियाओं के प्रत्येक चरण के विकास का इतिहास होता है । प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में कला वस्तुओं की उत्पादन प्रक्रिया के पीछे जो औद्योगिक, सांस्कृतिक परंपराएँ होती हैं; उनके इतिहास का अंतर्भाव रहता है ।

उपरोल्लिखित क्षेत्रों में तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण देने वाले अनेक संस्थान भारत में हैं । गुजरात में नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिजाइन-अहमदाबाद इस प्रकार का प्रशिक्षण देने वाले विश्व के अग्रणी संस्थानों में एक माना जाता है । २०१५ ई. में इस संस्थान ने एक ऑनलाइन पाठ्यक्रम प्रारंभ किया है ।

अगले पाठ में हम प्रसार माध्यमों और उनके इतिहास की जानकारी प्राप्त करेंगे ।

स्वाध्याय

१. (अ) दिए गए विकल्पों में से उचित विकल्प चुनकर कथन पूर्ण कीजिए ।

(१) चित्रकला और शिल्पकला का ..... में समावेश होता है ।

(अ) दृश्य कला (ब) ललित कला

(ब) लोक कला (क) अभिजात कला

(२) मथुरा शिल्पशैली का उदय ..... के शासनकाल में हुआ ।

(अ) कुषाण (ब) गुप्त

(क) राष्ट्रकूट (ड) मौर्य

(ब) निम्न से असत्य जोड़ी में सुधार कर पुनः लिखिए ।

(१) कुतुबमीनार – मेहरौली

(२) गोलगुंबज – बीजापुर

(३) छत्रपति शिवाजी महाराज रेल टर्मिनस – दिल्ली

(४) ताज महल – आगरा

२. टिप्पणी लिखिए ।

(१) कला (२) हेमाड़पंती शैली

(३) मराठा चित्रशैली

३. निम्न कथनों को कारणसहित स्पष्ट कीजिए ।

(१) कला के इतिहास का गहन अध्ययन करने वाले तज्ञों की आवश्यकता होती है ।

(२) चित्रकथी जैसी विलुप्त होती जा रही परंपरा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है ।

४. निम्न सारिणी पूर्ण कीजिए ।

मंदिर स्थापत्य शैली	नागर	द्राविड़	हेमाड़पंती
विशेषताएँ			
उदाहरण			

५. निम्न प्रश्नों के उत्तर विस्तार में लिखिए ।

(१) लोक चित्रकला शैली के विषय में विस्तार में जानकारी लिखिए ।

(२) भारत की मुस्लिम स्थापत्य शैली की सोदाहरण विशेषताएँ लिखिए ।

(३) कला क्षेत्र में व्यवसाय के कौन-कौन-से अवसर उपलब्ध हैं; इसे स्पष्ट कीजिए ।

(४) पृष्ठ क्र. २३ पर दिए गए चित्र का निरीक्षण कीजिए और निम्न मुद्दों के आधार पर वारली चित्रकला के विषय में जानकारी लिखिए ।

(अ) प्रकृति का चित्रण

(ब) मानवाकृतियों का आरेखन

(क) व्यवसाय (ड) मकान

उपक्रम

(१) यूनेस्को द्वारा घोषित भारत के विश्व विरासत स्थानों की अधिक जानकारी प्राप्त कीजिए ।

(२) आपके परिसर में मूर्तियाँ बनाने वाले मूर्तिकारों के कार्यों का निरीक्षण कीजिए और उनसे साक्षात्कार कीजिए ।

36IZAR